विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2
विक्रम सम्वत् के प्रवर्तक हैं विक्रमादित्य
श्रीराम तिवारी

पृष्ठ क्र. 3-6
विक्रम सम्वत् से निर्धारित होता है मांगलिक कार्य
डॉ. मुकेश शाह

पृष्ठ क्र. 6-7
विक्रमादित्य के रत्न : तुकांत कवि हैं घटखर्पर
डॉ. प्रीति पांडे

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक चर्चा
विज्ञान और पुरातन ज्ञान का संगम
मनोज कुमार

विक्रम सम्वत् के प्रवर्तक हैं विक्रमादित्य

दो सहस्त्र सम्वत् बीते हैं/हम निज विक्रम बिना आज फिर मरे जीते हैं ।
नित्य नये शक-हूण हमारा जीवन रस पीते हैं,/होकर भी क्या हुए आज भी उनके मनचीते हैं।
आपस में सम्बन्ध हमारे कडुवे हैं-तीते हैं,/भरे भरे हैं हाय हृदय ये, किन्तु हाथ रीते हैं!

- मैथिलीशरण गुप्त

श्रीराम तिवारी

स्वाधीन भारत में संविधान स्वीकार करते समय राष्ट्र गान एवं राष्ट्र ध्वज के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर दो सम्वत् अंगीकार किये गये हैं. पहला ईस्वी सम्वत् और दूसरा शक सम्वत्। ये दोनों ही सम्वत् भारत आक्रांताओं और उसे पराधीन बनाने वाली शक्तियों द्वारा प्रवर्तित किये गये हैं. जहाँ तक ईस्वी सम्वत् का प्रश्न है यह एक तरह से इसकी अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति की वजह से मान्य किये जाने योग्य है, परंतु शक सम्वत् को भी राष्ट्रीय स्तर पर अंगीकार कर लिया जाना आपत्तिजनक है, आपत्तिजनक होना ही चाहिए।

यह निर्विवाद तथ्य है कि शक हमारे देश में आक्रांता की तरह आये। यह इतिहास सिद्ध है कि मध्य एशिया बर्बर और दुर्दश जातियों का क्षेत्र रहा है। 160-165 ईस्वी पूर्व में घुमक्कड़ जातियों का निष्क्रमण बढ़ा। ह्यूंग नू जाति ने अपने पड़ोस की यूह्ची जाति को पराजित कर अपने राज्य से बेदखल किया तो यूह्ची जाति ने आक्रामक हो अपने पश्चिम में सीर दरिया के उत्तर में रहने वाली जाति शक को पराजित कर उनके स्थान पर कब्जा कर लिया। इसके फलस्वरूप शक जाति विस्थापित होकर दूसरे स्थानों की खोज में बर्बर हो उठी। उसने दक्षिण की ओर रूख किया। शकों की कुछ शाखाओं ने यहाँ-वहाँ घुसपैठ की। 120-140 ईस्वी पूर्व कुछ बर्बर शक बाख्त्री और पार्थव राज्यों पर टूट पड़े। शक हमले करते करते पूर्वी ईरान से होते हुए कन्दहार और बलूचिस्तान होते हुए सिंध और इंडो सिंथिया आ पहुँचे। भारत के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों में दाखिल होकर शकों ने गुजरात, सिंध में मार-काट मचाते हुए तक्षशिला और पंजाब में काबिज हो गये।

जैन ग्रंथ कालकाचार्य कथा के अनुसार उज्जैन के तत्कालीन राजा से प्रतिशोध लेने के लिए शकों को उज्जैन आक्रमण के लिए प्रेरित किया गया। लगभग 100 ईस्वी पूर्व शकों ने उज्जैन और तत्पश्चात मथुरा पर पर कब्जा किया। और धीरे-धीरे शक उज्जैन केंद्र से भारत के अनेक प्रांतों में दाखिल हो गये। अंत में शकों का सामना स्वतंत्रता प्रिय मालवों से हुआ, जो फिरोजपुर, पंजाब, अजमेर से विस्तारित होते हुए उज्जैन आ बसे थे। मालव गणों ने शकों को पराजित ही नहीं किया बल्कि उन्हें भारत भूमि छोड़ने को विवश किया। मालव गणों ने शकों को परास्त कर अवंति क्षेत्र को मालवभूमि बनाया। इसी तिथि से अवंति मालवा कहलाने लगी और विजय तिथि के स्मारक स्वरूप विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन हुआ, जिसे कभी-कभी कृत और मालव सम्वत् के रूप में भी संबोधित किया जाता रहा। सम्वत् प्रवर्तन के साथ साथ नये सिक्के भी चलाये गये. सिक्कों पर अंकित किया गया-
'मालवान (नां) जय(य:)'.

इसी विजय और गण के अवंति में प्रतिष्ठित होने के समय से आगे की काल गणना के लिए मालव सम्वत् या कहें कि विक्रम सम्वत् प्रशस्त हुआ।

भारतीय संस्कृति पर अभिमान करने वालों के लिए यह निश्चय ही गौरव करने योग्य है कि आज भारत वर्ष में प्रवर्तित विक्रम सम्वत्सर बुद्धनिर्वाणकाल गणना को छोड़ कर संसार के प्राय: सभी ऐतिहासिक सम्वतों में प्राचीन है। यह भारत के इतिहास की एक महत्वपूर्ण परिघटना है। विक्रम सम्वत् के उद्भव तक विशुद्ध वैदिक संस्कृति का काल, रामायण और महाभारत का युग, महावीर गौतम बुद्ध का समय, चंद्रगुप्त मौर्य एवं प्रियदर्शी अशोक, पुष्यमित्र शुंग की साहसगाथा, वेद, पुराण, सूत्रग्रंथ एवं स्मृतियों की रचना भारतवर्ष में हो चुकी थी, वैयाकरण पाणिनी और

पतंजलि और चाणक्य के पांडित्य तथा राजनीतिक बुद्धिमत्ता चतुर्दिक फैल चुकी थी। विक्रमादित्य का समय भारशिवनागों, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य, स्कंदगुप्त, यशोवर्मन, विष्णुवर्द्धन के बल और प्रताप की चमक से विश्व को चमत्कृत करने का समय था, यह ही वह समय था जब दुनिया कई भागों में भारत की संस्कृति व भारत के धर्म की सुगंधि विस्तारित थी। कालिदास, भवभूति, भारवि, भतृहरि, वराहमिहिर, माघ, दंडी, बाणभट्ट, धन्वन्तरि, कुमारिल भट्ट, आद्य शंकराचार्य, नागार्जुन, आदि की रचनाप्रतिभा चतुर्दिक व्याप्त थी।

भारतवर्ष में विक्रमादित्य युग परिर्वतन और नवजागरण की एक महत्वपूर्ण धुरी रहे हैं। और उनके द्वारा प्रवर्तित विक्रम सम्वत् हमारी एक अत्यंत मूल्यवान धरोहर है। यह भारतीयजन के लिए एक शक्ति और आत्माभिमान का स्रोत भी है। यह भी एक बड़ा कारण है कि विदेशी आक्रांताओं ने भारत गौरव तथा ज्ञान संपदा के प्रमाणों, साक्ष्यों, पुस्तकों, स्थापत्यों के सुनियोजित विनाश का अभियान चलाया। हमारी संपदा को विध्वंस किये जाने के प्रमाण लगातार मिलते रहे हैं। इस अभियान को उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भी अपना भरपूर समर्थन दिया. इन सभी की दुरभिसंधि यही थी कि भारत ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, चिकित्सा, आर्थिकी का नहीं बल्कि अंधेरे का क्षेत्र भर था, जिसके उद्धार के लिए गोरांगप्रभु जन ने देश को लूटा, मिटाया और फिर आधुनिक युग में प्रवेश का टिकट दिया, कृपा पूर्वक। उन्होंने दुनिया की तमाम सभ्यताओं के साथ यही कुछ किया. पश्चिम अभिमुख मानस के इतिहासकारों ने इसी क्रम में विक्रमादित्य को भी ध्वस्त करने की सचेत कोशिश की। ऐसे ही एक इतिहासकार डी. सी. सरकार ने विक्रमादित्य की परंपरा को अनैतिहासिक सिद्ध करने का सघन प्रयास किया। उन्होंने एन्शिएंट मालवा एंड दि विक्रमादित्य ट्रेडिशन की भूमिका में दो टूक कहा कि ईस्वी पूर्व प्रथम शती में पारंपरिक विक्रमादित्य के लिए कोई जगह नहीं है. अलबत्ता उन्होंने माना कि विक्रम सम्वत् की स्थापना विक्रमादित्य ने ही की। लेकिन वह उज्जैन के विक्रमादित्य नहीं हैं. लेकिन विक्रम सम्वत् का अस्तित्व उन्होंने या उन जैसे इतिहासकारों ने स्वीकार किया। स्वीकार इसलिए करना पड़ा उन सभी को, क्योंकि विक्रम सम्वत् भारत के काफी बड़े भूभाग में समादृत रहा है, सदियों से।

लेकिन विक्रमादित्य के अस्तित्व की गुत्थी भी विक्रम सम्वत् की वजह से अधिक उलझी लगती है क्योंकि विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन विदेशी आक्रांता शकों की पराजय और उन्हें देश से बाहर भगाने से आबद्ध हैं। और उपनिवेशवादी मानस इस बात को स्वीकारने के लिए तत्पर ही नहीं है कि भारतवर्ष में विदेशियों को मार भगाने का साहस कभी रहा भी था। विक्रमादित्य उन चुनिंदा शासकों में से थे जिन्होंने देश को विदेशी हमलावरों से मुक्ति दिलाई और इस महती उपलब्धि के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य ने विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन किया। मान्यता यह भी है कि जनता के ऋण मुक्त होने के अवसर पर उज्जैन में ऋण मुक्तेश्वर महादेव मंदिर तत्समय ही स्थापित हुआ होगा। कथा सरित्सागर में उल्लिखित है ही कि -''न मे राष्ट्रे पराभूतो न दरिद्रो न दुखित:।'' विक्रमादित्य सब लोगों के हितों की रक्षा करता था। उसके राज्य में न कोई दुखी था,न दरिद्र था और न कोई पराभूत। शकों पर अप्रतिम विजय के कारण विक्रमादित्य शकारि भी कहलाये और अप्रतिम साहस प्रदर्शन के कारण साहसांक भी।

यह भी ध्यान दिये जाने योग्य है कि विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन विक्रमादित्य द्वारा उज्जैन से किया गया। उज्जैन परम्परा से ही काल गणना का एक प्रमुख केंद्र माना जाता रहा और इसीलिए अरब देशों में भी उज्जैन को अजिन (AZIN) कहा जाता रहा। सभी ज्योतिष सिद्धांत ग्रंथों में उज्जैन को मानक माना गया है। आज जो वैश्विक समय के लिए ग्रीनविच की स्थिति है, वह ज्योतिष के सिद्धांत काल में और उसके बाद सैंकड़ों वर्षों तक उज्जैन की रही। यह भी निर्विवाद है कि ज्योतिर्विज्ञान उज्जैन से यूनान और एलेक्जेंड्रिया पहुँचा। काल गणना केंद्र होने से उज्जैन को विश्व के नाभि स्थल की मान्यता भी रही है- 'स्वाधिष्ठानं स्मृता कांची मणिपूरमवंतिका। नाभि देशे महाकालस्यत्राम्ना तत्र वै हर:।' साथ ही महाकालेश्वर की उज्जैन में अवस्थिति काल के विशेष संदर्भ की द्योतक है। इस प्रकार विक्रम सम्वत् ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार भी एक विशेष महत्व रखता है।

विक्रमादित्य के अवसान के बाद उनके वंशज साम्राज्य का संरक्षण नहीं कर पाये अत: शकों ने विक्रम के वंशज को पराजित कर अपना शक सम्वत् चलाया।

शकानां वंशमुच्छेद कालेन कियतापि हि।
राजा विक्रमादित्य: सार्वभौमोपमोऽभवत्।।
मेदिनीमनृणां कृत्वा ऽ चीकरद् वत्सरं निजम।
ततो वर्षशते पंच त्रिषता साधिके पुन:।
तस्या राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सर: स्थापित: शकै:।।

एक दूसरा मत यह भी है कि शक सम्वत् संभवत: कनिष्क ने चलाया था और उसके समकालीन शक क्षत्रपों और सातवाहनों के राज्यों में इसका काफी प्रयोग होने की वजह से इसका नामकरण शक सम्वत् हो गया। शक चाहे शक शासकों ने प्रारंभ किया या चाहे कुषाण वंश के शासक कनिष्क ने, लेकिन ये शक और कुषाण दोनों ही भारत आक्रांता थे। विदेशियों द्वारा शुरू किये ये सम्वत् को भारत में स्वीकार किया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है। वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर सटीक राष्ट्रीय कैलेंडर अंगीकार करने के लिए गठित समिति की वर्ष 1955 में प्रकाशित रिपोर्ट की भूमिका में पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि- ''विभिन्न कैलेंडर देश में पिछले राजनीतिक विभाजन का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तब यह वांछनीय है कि कैलेंडर में हमारी नागरिक, सामाजिक और अन्य आवश्यकताओं की एकरूपता हो और इस समस्या का निदान वैज्ञानिक आधार पर हो। लेकिन राजनीतिक विभाजन, वैज्ञानिकता, राष्ट्रीयता तथा नागरिक, सामाजिक आवश्यकताओं को अलक्षित करते हुए विभाजन तथा देश की पराजय के प्रतीक सम्वत्सरों को आधिकारिता प्रदान की गयी।

विक्रम सम्वत् से ही निर्धारित होता है मांगलिक कार्य

डॉ. मुकेश शाह

भारतीय जीवन में विक्रम संवत से ही मांगलिक कार्यों का निर्धारण होता है। प्रत्येक भारतीय के घर में पंचाग का आधार विक्रम संवत होता है। यद्यपि अभिलेखों में शक सम्वत् के लिए शक, शकनृप संवत्सरा, शकनृपति संवत्सरा, शकनृपति राज्याभिषेक संवत्सरा, शकनृप कालातीत संवत्सरा, शकेन्द्र काल, शक काल, शक समय, शकाब्द, शकाब्दे, शक सम्वत, शक शालीवाहन, शालीवाहन निरमिता, शक वर्षा आदि नामों का प्रयोग किया गया है। इस सम्वत् ने भारतीय जनमानस में सर्वाधिक उच्च स्थान पाया है। यह तीन प्रमुख स्तरों से होकर गुजरा। प्रथम अवस्था, जिसे पुराना शक सम्वत् कहा जाता है, 123 ई.पू. से आरम्भ हुआ। सम्वत् की दूसरी अवस्था वह रही, जबकि उसे कुषाण शासक कनिष्क ने 78 ईस्वी में नये रूप में ग्रहण किया। भारत में दो सहस्राब्दियों से शक सम्वत् आज तक प्रचलित है, जिसे सन् 1955 में भारत सरकार ने संशोधित कर राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में ग्रहण किया है, यह इस सम्वत् की तृतीय अवस्था है।

प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भास्कर ने ग्रहगणिता में लिखा है- कलि के 3179 वर्ष बीतने पर शक राजा की मृत्यु हुई। सिद्धान्त शिरोमणि के लेखक श्रीपति के अनुसार शक काल की समाप्ति पर कलि के 3179 वर्ष बीत चुके थे। ब्रह्मगुप्त, वात्यवारा आदि ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। इस आधार पर शक सम्वत् 3179-3101=78 ई. आता है। अलबरुनी के मत में शक सम्वत् को आरंभ करने वाला शासक सम्भवत: विक्रमादित्य था, से भी शक सम्वत् की तिथि 78 ई. आती है। अलबरुनी के अनुसार शक सम्वत् विक्रम सम्वत् से 135 वर्ष बाद आरंभ हुआ। ऐसा भी माना जा सकता है कि जिस प्रकार विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी, उसी प्रकार कालान्तर में शकों ने मालवा पर पुन: विजय प्राप्त करके कुषाण शासक कनिष्क के द्वारा स्थापित सम्वत् को अपने नाम से ही मालवों पर विजय स्मृति के रूप में प्रचारित किया, यही कारण है कि कुषाणों का सम्वत् 'शक सम्वत्' नाम से प्रसिद्ध हुआ और सम्भवत: इसका प्रारम्भ उज्जयिनी के शक शासकों ने ही किया था।

गुप्त सम्वत् : वस्तुत: गुप्तों का मालवा पर अधिकार रहा है और यहाँ पर गुप्त सम्वत् के अभिलेख मिलते हैं, अत: मालवा के संदर्भ में इस सम्वत् का उल्लेख काल गणना की दृष्टि से आवश्यक है। गुप्त राजवंश के नाम पर इस सम्वत् का नाम गुप्त सम्वत् है। अभिलेखों में इसके लिए गुप्त काल व गुप्त वर्ष नामों का प्रयोग हुआ है। वलभी नरेशों द्वारा भी इस सम्वत् का प्रयोग किया गया, अत: यह वलभी सम्वत् भी कहलाया। इस सम्वत् का प्रारम्भ 319 ई. से प्रारम्भ हुआ माना जाता है जो कि उत्तरी भारत के विशाल क्षेत्र में प्रचलित रहा। स्वयं गुप्त नरेशों ने इसका प्रयोग किया तथा उनके सामन्त राजवंशों ने भी इस सम्वत् का प्रयोग किया। सर्वाधिक मान्य विचार यह है कि गुप्तवंशी शासक चन्द्रगुप्त प्रथम ने गुप्त सम्वत् की स्थापना की। ऐसा माना जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम अपने वंश का प्रथम ऐसा शासक था, जिसने स्वतंत्र गुप्त साम्राज्य की स्थापना की तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। सम्भवत: इसी ने अपने राज्यारोहण के समय गुप्त सम्वत् की स्थापना की। चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि गुहाभिलेख, कुमारगुप्त प्रथम का दामोदरपुर ताम्र लेख, मालवा का मंदसौर अभिलेख, बुद्धगुप्त का एरण स्तम्भ लेख (गुप्त सम्वत् 165, ई.सं. 484), भानुगुप्तकालीन एरण स्तम्भ लेख, इत्यादि अनेक अभिलेखों में गुप्त सम्वत् में तिथियाँ अंकित हैं। गुप्त सम्वत् की गणना पद्धति शक व विक्रम की मिश्रित पद्धति है। ''गुप्त सम्वत् का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल 1 से होता है और महीने पूर्णिमान्त है। इस सम्वत् के वर्ष बहुधागत लिखे मिलते हैं और जहाँ वर्तमान लिखा रहता है, वहाँ एक वर्ष अधिक लिखा रहता है।'' एक वर्ष में 12 माह होते थे तथा एक माह में दो पक्ष होते थे।

अमरसिंह के अमरकोश में कालगणना सम्बन्धी सूचनाएँ : मालवा के विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक अमरसिंह ने भी अपने ग्रन्थ 'अमरकोश' में भी काल गणना विषयक जानकारी प्रस्तुत की है, जिसमें कुछ वैज्ञानिक शब्दावलियाँ मिलती हैं। अमरकोश के कालवर्ग अध्याय में समय के चार नाम-काल:, दिष्ट:, अनेहा तथा समय: मिलते हैं। इसी प्रकार याम: तथा प्रहर:, प्रहर के दो नाम हैं, जो दिन और रात के आठवें हिस्से अर्थात् तीन घण्टे के बराबर होता हैं। पर्व तथा संधि दो नाम प्रतिपद और पूर्णिमा या अमावस्या के मध्यभाग हैं। पक्षान्त: तथा पंचदशी पूर्णिमा या अमावस्या तिथि के दो नाम हैं, जो कि 15-15 दिन की होती है। पौर्णमासी तथा पूर्णिमा अर्थात् शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि के दो नाम हैं। अनुमति: अर्थात् जिसमें चन्द्रमा की कला कुछ क्षीण हो, उस पूर्णिमा का अर्थात्- प्रतिप्रद्युक्त पूर्णिमा का एक नाम है। राका शब्द का अर्थ- जिसमें चन्द्रमा की कला कुछ परिपूर्ण हो, उस पूर्णिमा का अर्थात् शुद्ध पूर्णिमा का नाम है। अमावस्या, अमावस्या दर्श: सुयैन्दुसंगम:- ये अमावस्या अर्थात् कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि के नाम है। सिनीवाली अर्थात् जिसमें चन्द्रमा की कला पूर्णतया क्षीण नहीं हुई हो, उस अमावस्या का अर्थात् चतुर्दशीयुक्त अमावस्या का नाम है। कुहू: (सा नष्टेन्दुकला कुहू:) अर्थात् जिसमें चन्द्रमा की कला पूर्णतया क्षीण हो गयी हो, उस अमावस्या अर्थात् शुद्ध अमावस्या का नाम है। उपराग: तथा ग्रह: -सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के दो नाम हैं। सोपप्लवोउपरक्तौद्वौ अर्थात् सोपप्लव: और उपरक्त: ये दो नाम ग्रहण लगने पर राहु से ग्रस्त (कुछ कटे हुए) सूर्य या चन्द्रमा के नाम हैं। अग्न्युत्पात उपाहित: अर्थात् अग्न्युत्पात: और उपाहित: ये आकाश में अग्निविकार, तारा टूटना, धूमकेतु नाम की तारा का उदय होना और उसके उपद्रव, सूर्यग्रहणादि में आग्नेयमण्डल से उत्पन्न तेजो विशेष के नाम हैं।

इसी प्रकार अमरसिंह के ग्रन्थ में समय, प्रहर तथा काल-विभाजन के अन्तर्गत पूर्णिमा-अमावस्या तथा चन्द्रकला, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण की जानकारी भी प्राप्त होती है। काल विभाजन को भी

शब्दावलियों के माध्यम से अमरकोश के अन्तर्गत प्रदर्शित किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि गुप्त युग में काल-विभाजन की प्रणालियों का विकास हो चुका था। इसके अन्तर्गत-निमेश, काष्ठा, कला, क्षण, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा अयन के प्रकार,वत्सर, सम्वत्सर, विशुवत्, युग, कल्प, मन्वन्तर तथा प्रलय का वैज्ञानिक विवरण मिलता है।

इसमें निमेश अर्थात् आँख की पलक गिरने में जितना समय लगता है, उसे कहा है तथा काष्ठा अर्थात् 18 निमेश के बराबर का समय, कला- 30 काष्ठा के बराबर का समय, क्षण- 30 कला के बराबर का समय, मुहूर्त- 12 क्षण अर्थात् दो घड़ी के बराबर का समय, अहोरात्र अर्थात् दिन-रात के 30 मुहूर्तों या 60 घड़ी के बराबर का समय, पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिन-रात का समय कहलाता है। यह पक्ष दो प्रकार का होता है-शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष। उजले पक्ष को शुक्ल पक्ष तथा अँधेरे पक्ष को कृष्ण पक्ष कहते हैं। मास- दो पक्षों का एक मास/महीना होता है। द्वौ- द्वौ मार्गादिमासौ स्याद् ऋतु अर्थात् दो-दो मासों/महीनों की एक ऋतु होती है और इस प्रकार 6 ऋतुओं का एक वर्ष होता है। 3 ऋतुओं का अर्थात् 6 मास का एक अयन होता है। अयने द्वे-गतिरुदग्दक्षिणार्कस्य अर्थात् सूर्य के गतिभेद से यह अयन दो प्रकार का होता है, उसमें जब सूर्य की गति कुछ उत्तर की तरफ होती है तो उसे उत्तरायण (उत्तरायनम्) और जब सूर्य की गति कुछ दक्षिण की तरफ होती है तो उसे दक्षिणायण (दक्षिणायनम्) कहते हैं (उत्तरायण में मकर से मिथुन राशि तक और दक्षिणायन में कर्क से धनु राशि तक सूर्य संक्रान्ति रहती है)। वत्सर: (द्वे अयने तु वत्सर:) अर्थात् दो अयनों का एक वत्सर (वर्ष) होता है। सम्वत्सरों वत्सरोऽब्दो हायनोब्दो शरत्समा: अर्थात् सम्वत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, शरत् तथा समा ये वर्ष या साल के नाम बताये गये हैं। विशुवत् या विशुवम् का तात्पर्य जब रात-दिन दोनों बराबर हो जाते हैं; उस समय को कहा गया है। यह समय 21 मार्च और 23 सितम्बर को आता है, जब उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर क्रमश: दिन-रात बराबर-बराबर होते हैं।

भारतीय पंचांग में यह समय तुला और मेष की सूर्य संक्रान्ति के समय होता है। इसी प्रकार अमरकोश में मनुष्यों के एक महीने का पैत्र: अहोरात्र: (मासेन स्यादहोरात्र: पैत्र: वर्षेण देवत:) अर्थात् पितरों का दिन-रात होता है तथा मनुष्यों के एक वर्ष या उत्तरायण और दक्षिणायन का दैव: अहोरात्र: अर्थात् देवताओं का एक दिन-रात होता है। देवताओं के दो हजार युग का ब्राह्मा: अहोरात्र: अर्थात् ब्रह्मा का दिन-रात होता है। यही ब्रह्मा की दिन-रात मनुष्यों का कल्पौ, कल्प अर्थात् स्थिति और प्रलय का काल है। देवताओं के इकहत्तर (71) युग का मन्वन्तरम् एक मन्वन्तर अर्थात् चौदह मनुओं में से प्रत्येक मनु का स्थितिकाल होता है तथा सम्वर्त, प्रलय, कल्प, क्षय तथा कल्पान्त प्रलय काल के नाम हैं। इस प्रकार हमें अमरकोश की शब्दावलियों के माध्यम से विक्रमादित्ययुगीन काल गणना की जानकारी मिलती है, जो स्पष्ट करती है कि तत्कालीनयुग में कालगणना पर प्रगति हो रही थी।

वराहमिहिर की वृहत्संहिता एवं पंचसिद्धान्तिका में कालगणना विषयक सूचनाएँ : वराहमिहिर ने वैदिक संहिता तथा उनके पूर्व के आचार्यों के मतों का प्रयोग कर कालगणना विषयक जानकारी वृहत्संहिता के उपनयनाध्याय से लेकर गर्भलक्षणाध्याय तक तथा आगे के अध्यायों में और बृहज्जातक के प्रत्येक अध्यायों में न्यूनाधिक मात्रा में प्रस्तुत की है, जो अधोलिखित है- ज्योतिषशास्त्र (कालगणना) के अंगों का वर्णन करते हुए वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में कहा है कि अनेक भेदों से युक्त ज्योतिषशास्त्र के 3 स्कन्ध हैं- संहिता, तन्त्र तथा होरा।

- जिस स्कन्ध में सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसे संहिता कहते हैं।
- जिस स्कन्ध में गणित द्वारा ग्रह गति का निर्णय किया गया हो, उसे तंत्र कहते हैं।
- इनके अतिरिक्त जातक, फल, मुहूर्त आदि का निर्णय जिस स्कन्ध में हो, उसे होरा कहते हैं।

साथ ही वृहत्संहिता में वराहमिहिर ने उल्लेख किया है कि - मैंने करण ग्रन्थ (पंचसिद्धान्तिका) में तारा ग्रहों (भौमादि पंच ग्रहों) के वक्र मार्ग, उदय आदि का तथा होरा (बृहज्जाक, बृहद्विवाहपटल आदि) ग्रन्थों में जन्म, यात्रा, विवाह आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ग्रह गणित विभाग के अन्तर्गत पाँच सिद्धान्तों का प्रणयन वराहमिहिर ने किया था, जिसे पंचसिद्धान्तिका कहते हैं, ये सिद्धान्त हैं- 1. पोलिश 2. रोमक 3. वासिष्ठ 4. सौर तथा 5. पैतामह ।

इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों के माध्यम से वराहमिहिर ने काल का विभाजन 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' के तहत किया है अर्थात् छोटे से छोटा तथा बड़े से बड़ा समय का विभाजन।

वराहमिहिर ने सौर, सावन, नाक्षत्र तथा चान्द्र इन चारों मानों का तथा अधिक मास, क्षय मास इनकी उत्पत्ति के कारणों पर ध्यान देने की बात भी ज्योतिषियों को कही है। वस्तुत: सूर्य के एक अंश भोग्य काल को एक सौर दिन, सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक के समय को एक सावन दिन, नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय तक को एक नक्षत्र दिन और एक तिथि भोग्य काल को चान्द्र दिन कहते हैं। इसी प्रकार शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमान्त तक एक चान्द्र मास होता है, यदि इस चान्द्र मास में रवि की संक्रान्ति न हो तो अधिक मास, दो संक्रान्ति हो तो क्षय मास होता है। क्षय मास कार्तिक आदि तीन महीने में ही होता है तथा जिस वर्ष में क्षय मास होता है, उस वर्ष में दो अधिमास पतित होते हैं।

कालगणना को आगे बढ़ाते हुए वराहमिहिर ने प्रभाव आदि साठ सम्वत्सर तदन्तर्गत् युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति (प्रवर्तन) तथा छेद (निवृति) के ज्ञान की बात कही है। सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिणायन, उत्तरायन, नीच और उच्च गतियों के कारणों, सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान (दिक्ज्ञान), स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रह समागम, ग्रहयुद्धों, प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक

देशान्तर जानने, पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांस, लम्बांश, द्युज्यापांश, चरखण्ड, राष्युदय, छाया, नाड़ी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने की चर्चा दैवज्ञों से कही है। वराहमिहिर के अनुसार जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, ऐसे गुणसम्पन्न व्यक्ति की वाणी कभी भी वन्ध्या (निष्फल) नहीं होती है।

वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में कालगणना के अन्तर्गत सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन पर चर्चा करते हुए कहा है कि किसी समय आश्लेशा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी, किन्तु इस समय (उनके समय) कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। निश्चित रूप से वराहमिहिर के पूर्व सूर्य के दोनों अयनों की जानकारी प्राचीन वाङ्मय में थी और वराहमिहिर के समय तक उत्तरायण-दक्षिणायन की स्थिति में परिवर्तन हुआ, जिसका उल्लेख उन्होंने किया है।

वराहमिहिर के ग्रन्थ बृहज्जातक में कुल 28 प्रकरण हैं, जिसके प्रत्येक प्रकरण में ग्रह, नक्षत्रों की गति एवं स्थिति के आधार पर फलित ज्योतिष की सूचना दी गई है, तथापि इसके 8वें प्रकरण दशान्तर्दशाध्याय में प्रत्येक ग्रहों की आयु, वर्ष, प्रमाण, केन्द्रगत ग्रहों से दशायान, अन्तर्दशा कारक ग्रह, सूर्य-चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु- शुक्र-शनि और लग्न दशाओं का शुभाशुभ विचार इत्यादि कुल 33 श्लोकों में उपलब्ध हैं, इससे भी तद्युगीन खगोलशास्त्रीय वैज्ञानिक जानकारी मिलती है।

इसी प्रकार भारतीय ज्योतिष में वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका का विशेष महत्व है, क्योंकि इस ग्रन्थ में वराहमिहिर के पूर्ववती प्रचलित 5 सिद्धान्तों का एक जगह परिचय प्राप्त हो जाता है, यह ग्रन्थ बहुत दिनों तक अप्राप्य था; परन्तु प्रो. बूलर ने सर्वप्रथम पंचसिद्धान्तिका की दो प्रतियाँ प्राप्त की। इन्हीं प्रतियों का डॉ. जी. थीबो एवं महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने संस्कृत की टीका सहित अंग्रेजी अनुवाद कर सन् 1889 में प्रकाशित किया।

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका में अपने समय के पाँच सिद्धान्तों का सारांश ही दिया है, इसमें 18 अध्याय तथा कुल 442 श्लोक हैं। डॉ. थीबो ने पंचसिद्धान्तिका पर 61 पृष्ठीय अंग्रेजी में एक भूमिका लिखी है, जिसका सारांश यह है कि वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका नामक जो ग्रन्थ लिखा है, वह वस्तुत: करण ग्रन्थ है। करण ग्रंथ का अर्थ है-कामचलाऊ पुस्तक अर्थात् करण ग्रन्थों में ऐसे नियम होते हैं, जिससे ज्योतिष की गणना तुरन्त हो जाती है। यही कारण है कि वराहमिहिर ने भी अपने पाँच सिद्धान्तों के बारे में लिखा है कि इनमें सूर्य सिद्धान्त सर्वोत्तम हैं तथा रोमक और पोलिश लगभग समकक्ष हैं और शेष दो सिद्धांत इनसे बहुत हीन हैं।

पंचसिद्धान्तिका का बारहवां अध्याय पैतामह सिद्धांत का सारांश देता है। इस अध्याय में कुल 5 श्लोक हैं, जिसमें प्रथम 3 का अर्थ प्रस्तुत है, जिसके अनुसार 1. सूर्य, चन्द्र का युग 5 वर्ष का होता है, तीस माह में एक अधिमास होता है और 62 दिनों में एक तिथि का क्षय होता है। 2. शकेन्द्र काल से 2 घटा कर उसमें 5 का भाग देने पर जो शेष बचे, उससे अहर्गण बनाने पर वह (अहर्गण) माघ शुक्ल पक्ष से आरम्भ होगा। 3.यदि अहर्गण में उसका 61वां भाग जोड़ दिया जाय तथा गुणनफल को 122 से विभक्त करें तो फल, सूर्य का नक्षत्र बताएगा।

इससे स्पष्ट होता है कि पैतामह सिद्धान्त में वेदांग ज्योतिष की तरह 5 वर्ष का युग था। वर्ष में महत्तम दिनमान 18 मुहूर्त तथा लघुत्तम दिनमान 12 मुहूर्त माना गया है। इससे ऐसा लगता हैं कि यद्यपि वराहमिहिर ने अपने सिद्धान्तों पर यवन प्रभाव बताया है, तथापि ये सिद्धान्त पूर्णरूप से भारतीय खगोल विद्या के ही रूप थे। इसी तरह रोमक और पोलिश सिद्धान्तों का भी विवरण आता हैं किन्तु थीबो इत्यादि उसका सही अर्थ नहीं लगा पाये हैं, ऐसा विद्वानों का मानना है। इसके अतिरिक्त पोलिश सिद्धान्त में उज्जयिनी तथा काशी से यवनपुर का देशान्तर दिया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि उज्जयिनी उस युग में कालगणना का केंद्र थी। पंचसिद्धान्तिका में वराहमिहिर ने उज्जयिनी के महत्व को नवीन प्रयोगों के साथ जोड़ा है। वस्तुत: प्राचीनकाल से ही उज्जयिनी कालगणना का प्रमुख केंद्र रही है। कालान्तर में भास्कराचार्य ने भी उज्जयिनी के महत्व को स्वीकारा है। बृहज्जातक में भी उज्जयिनी के महत्व की चर्चा वराहमिहिर ने की है, क्योंकि यहाँ से कर्क रेखा गुजरती है। कालगणना के लिए वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में विभिन्न यंत्रों की भी चर्चा की है। कालान्तर में शंकु, वलय, नाड़ी इत्यादि यंत्रों के माध्यम से सवाई जयसिंह ने उज्जैन में वेधशाला का निर्माण किया जो कि उज्जयिनी के कालगणना के प्रमुख केन्द्र होने को स्वीकृति देता है। उज्जैन के समीप महिदपुर तहसील के डोंगला ग्राम में वर्तमान में डॉ. वाकणकर वेधशाला का निर्माण किया जा रहा है, यह वह स्थल है, जहाँ पर प्रत्येक 22 जून को 12 बारह बजे के लगभग कुछ समय के लिए भूमि से छाया समाप्त हो जाती है, यह स्थिति यहाँ स्थित कर्कराजेश्वर मंदिर के समीप होती है। कुछ वर्ष पूर्व प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने भी इलाहाबाद के स्थान पर उज्जैन को ग्रीनविच सेंटर बनाने की बात कही थी। स्पष्ट है, कालगणना में उज्जयिनी को महत्व प्रारम्भ से वर्तमान समय तक बना हुआ है।

इस प्रकार वराहमिहिर ने कालगणना से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का उद्घाटन हमारे सम्मुख किया है, जिसे काल(समय) के विभिन्न आयामों, यथा-युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि तथा त्रुटि के विभिन्न अवयवों से हमारा परिचय करवाया है, जिसकी तालिका पूर्व में वर्णित की गयी है। इसी तरह पंचसिद्धान्तिका के पाँच सिद्धान्तों, उन पर यवन प्रभाव, उनमें से प्रमुख सिद्धान्त तथा निकृष्ट सिद्धान्त सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र मास, मलमास इत्यादि पर भी विस्तृत विवरण वराहमिहिर ने किया है। 'बृहज्जातक' को उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति कहा है। वे इस ग्रन्थ पर विशेष आस्थावान थे। शास्त्रों के शोधपूर्ण अध्ययन से अनेक मुनियों, आचार्यों और विशिष्ट विद्वान वर्ग के मतों (विचारों) को समझ कर 'रूचीरां होरां' अर्थात् होरा शास्त्र में सुन्दर ग्रन्थ रचना (बृहज्जातक) उन्होंने की हैं। होराशास्त्र पर

ही उन्होंने दोनों ग्रन्थ-वृहत्संहिता तथा बृहज्जातक लिखे हैं, जिनके समस्त अध्यायों में ग्रह, नक्षत्रों, राशि के आधार पर फलित ज्योतिष और तकनीकी विज्ञान को प्रदर्शित किया है।

श्रीहर्ष सम्वत् :गुप्तों की सत्ता के समापन के बाद उत्तरी भारत में पुश्यभूति वंश का प्रारम्भ होता है। ऐसा माना जाता है कि हर्षवर्धन का साम्राज्य थानेश्वर एवं कन्नौज के अतिरिक्त मालवा पर भी था। नर्मदा (रेवा) नदी के किनारे चालुक्य शासक पुलकेशीन द्वितीय से युद्ध के समय वह मालवा के रास्ते ही गया होगा। अत: उसका मालवा पर शासन माना जा सकता है। इस आधार पर श्रीहर्ष सम्वत् का उल्लेख किया गया है।

श्रीहर्ष सम्वत् का आरम्भ कन्नौज के शासक हर्ष के नाम पर पड़ा। इस सम्वत् का विस्तार मथुरा तथा कन्नौज में हुआ। हर्ष सम्वत् के वर्तमान प्रचलित वर्ष का अब अनुमान कठिन है, क्योंकि इसकी गणना पद्धति वर्ष की लम्बाई, महीनों की संख्या तथा लौंद के वर्ष आदि का उल्लेख नहीं मिलता। इस सम्वत् के आरम्भ का समय 529 चालू शक अथवा 606-07 ई. है। हर्षवर्द्धन अपने वंश का एक शक्तिशाली शासक था। अपने राज्यारोहण के समय हर्ष ने इस नए सम्वत् की स्थापना की थी। इस सम्वत् का वास्तविक आरम्भ 612 ई. में हुआ तथा इसके आरम्भ की तिथि 606-07 से मानी गई। भारतीय कैलेण्डर सुधार समिति ने भी 606 ई. की तिथि हर्ष सम्वत् के आरम्भ की स्वीकार की है।

कुल मिलाकर भारत में कालगणना से सम्बन्धित अनेक सम्वतों का प्रारम्भ समय-समय पर विभिन्न राजाओं द्वारा विशिष्ट अवसरों पर अथवा अन्य ऐतिहासिक घटनाओं एवं धार्मिक प्रयोजन के आधार पर होता रहा। साथ ही इन विभिन्न सम्वतों में तिथि सुधार भी होता रहा और चंद्र तथा सौर अथवा चंद्रसौर वर्ष, मास तथा दिन के आधार पर तिथियों को व्यवस्थित भी किया जाता रहा। कैलेण्डर सुधार समिति ने भी इसमें अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा विभिन्न सम्वतों को शक सम्वत्, विक्रम सम्वत्, ग्रीगेरियन सम्वत्, बौद्ध सम्वत्, जैन सम्वत्, हिज्री सम्वत् इत्यादि में प्रयोग कर कालगणना को एक व्यवस्थित आधार प्रदान करने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप इतिहास लेखन एवं उसका पठन-पाठन भी व्यवस्थित हुआ। सभी सम्वतों को एक-दूसरे सम्वतों में जोड़कर अथवा घटाकर इतिहास की एक तिथि पर पहुँचना, कालगणना तथा इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके माध्यम से अनेक अनछुए पहलुओं पर भी प्रकाश पड़ा है और कई अन्य घटनाओं का अन्त:सम्बन्ध भी स्थापित हुआ है। साथ ही विभिन्न विद्वानों के मतों के माध्यम से प्राचीनकालीन विदेशी यात्रियों द्वारा तद्युगीन उल्लेखित तिथियों एवं भारत में उपलब्ध विभिन्न साक्ष्यों यथा-अभिलेख, ताम्रपत्र, ताड़पत्र, पाण्डुलिपियों इत्यादि के माध्यम से इतिहास लेखन एवं कालनिर्णय करने में आसानी हुई है और भारतीय इतिहास की अनेक भ्रांतियों को दूर करने में भी मदद मिली है, जिससे मालवा की कालगणना पद्धति, यंत्र व साहित्य का उल्लेखनीय योगदान है, विशेषकर विक्रमादित्ययुग की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण है।

विक्रमादित्य के रत्न

तुकांत कवि हैं घटर्खपर

डॉ. प्रीति पाण्डे

विक्रमादित्य के नवरत्नों में परिगणित घटर्खपर महान तुकान्त कवि थे जिन्होंने संभवत: प्रथम दूतकाव्य की रचना की जो आगे चलकर कवि कालिदास के मेघदूत का आधार बना। इन्हें 'घटर्खपर' अथवा 'घटकर्पर' दोनों नामों से जाना जाता है। उन्होंने कहीं भी अपने जन्मस्थान अथवा अन्य परिचय नहीं दिया है। अपने नाम के विषय में वे स्वयं एक श्लोक में कहते हैं-

'भावानुरक्त-वनिता-सुरतै: शपैयमालाम्बय चाम्बु तृषित:

जीयेय येन कविना यमकै: परेण,

तस्मै वहेयमुदकं करकोशपेयम् घटकर्परण।।'

अर्थात् भावानुरक्त वनिता-सभोग की शपथ लेकर 'जो कवि मुझे यमक-रचना में परास्त कर देगा, उसके लिये मैं फूटे घड़े से पानी भरूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा के लिये प्रयुक्त 'घट-खर्पर' पद उनका नाम मान लिया गया।

बृजकिशोर चतुर्वेदी ने इस नाम के सम्बन्ध में एक अन्य तर्क दिया है कि 'विक्रमादित्य के नवरत्न केवल कवि अथवा लेखक ही नहीं थे अपितु वे नौ ग्रहों के आधार पर शासन के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष भी थे और वे अपने-अपने विभागों के अध्यक्ष भी थे और शासन सम्बन्धी कार्यों में भी सहयोग करते थे। उन दिनों तंत्र का बहुत अधिक प्रचार था। तन्त्रों के माध्यम से ही रस और पारद के प्रयोगों से धातु परिवर्तन, स्वर्णादि निर्माण, जसद (जस्ता) का निर्माण आदि भी होता था। रूद्रयामल में वर्णित 'धातुमञ्जरी में जसद का पर्याय 'खर्पर' भी बतलाया गया है। यथा -

जसत्वं च जरातीतं राजतं यशदायकम्।

रुप्यभ्राता वरीयक्ष्च त्रोटक कोमलं लघु।।

चर्मकं खर्परं चैव रसदं रसवर्धकम्।

सदापथ्यं बलोपेतं पीतरागं सुभस्मकम्।।

यह जसद-जस्ता यशदायक (अपभ्रंश) उन दिनों नवीन अविष्कार के कारण देश की अमूल्य संपत्ति हो रहा था। अत: उस समय के वैज्ञानिकों को देखकर स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करने वाले सम्राट विक्रमादित्य ने अविष्कारों का स्वतन्त्र विभाग स्थापित कर किसी विशेषज्ञ को उसका अध्यक्ष बनाया होना और विशेषज्ञ का नाम ही किसी कारणवश 'घटर्खपर' पड़ गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। घड़े में जसद रखने वाले को घटर्खपर कहते होंगे।

यह एक विचार मात्र है जिस पर बिना ठोस प्रमाण के किसी निर्णय नहीं पहुँचा जा सकता है। घटर्खपर पर एक प्राचीन टीकाकार ने लिखा है कि-

घटन-खर्परमानीय वहनाद घट-खर्परम्।

इति नाम्ना श्रुतं तस्माद् योजनं तस्य दुर्घटम्।।

किन्तु यह भी प्राचीन मान्यता का पोषक है। यही कारण है कि घटर्खपर अथवा घटर्कपर कवि एवं काव्य दोनों ही संज्ञा बन गई।

प्रस्तुत कवि का जीवन-वृत्त भी अज्ञात ही है। कहीं भी कोई कथा जीवनवृत्त आदि नहीं मिलता है। बस इतना कहा जा सकता है कि उन्होंने उत्तम कुल में जन्म पाकर विद्याध्ययन किया होगा और तत्कालीन विद्वत् समाज में अपनी प्रौढ़ विद्वता से क्रमशः आगे बढ़ते हुये राजसम्मान प्राप्त किया होगा। यमकालङ्कार पूर्ण रचना करने के लिये साहित्य के साथ ही व्याकरणशास्त्र का प्रौढ़ ज्ञान भी नितान्त अपेक्षित होता है। अतः वे प्रसिद्ध वैयाकरण भी रहे हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

कुछ विद्वानों का यह मानना है कि घटर्खपर नाम के आधार पर ये संभवतः कुम्भकार वर्ण से सम्बन्धित होंगे। उनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर समतावादी विक्रमादित्य ने उन्हें अपने नवरत्नों में सम्मिलित किया जहाँ पर उन्होंने अपनी रचना में यमक अलंकार की चुनौती भी घड़े के रूपक में दी है।

घटर्खपर की रचनाएँ :

ज्योर्तिविदाभरण के अनुसार नवरत्नों की सूची में से एक घटर्खपर अपने नाम की ही भाँति अद्वितीय थे। इनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र कवित्व था। इनके मात्र दो काव्य अब तक प्राप्त हैं किन्तु यही अपने आप में इतने विशिष्ट हैं कि उनसे घटर्खपर की विद्वता प्रदर्शित होती है।

अभी तक घटर्खपर के दो काव्य प्राप्त हैं।

प्रथम घटर्खपर काव्य एवं द्वितीय नीतिसार।

घटर्खपर काव्य 21 अथवा 22 श्लोकों का एक काव्य संग्रह है। यह एक दूत काव्य है जिसमें एक विरहिणी अपने दूरस्थ पति को पावस ऋतु में स्मरण करती है एवं मेघों के माध्यम से संदेश भेजती है। विरहिणी का संदेश श्लोक क्र. 7 से श्लोक क्र. 20 में दिया गया है। श्लोक क्र. 1 से श्लोक क्र. 5 तक काव्य की भूमिका बनाई गई है जिसमें पावस ऋतु के प्राकृतिक दृश्यों तथा उसके कारण उत्पन्न विरह पीड़ा का वर्णन किया गया है। श्लोक क्र. 6 अन्य पुरुष के माध्यम से श्लोक समूह 1-5 एवं 7-20 के मध्य निरंतरता निर्मित करता है। श्लोक क्र. 21 में स्त्री के प्रिय की तीव्र गति से वापसी की कल्पना की गई है। श्लोक क्रमांक 22 में कवि चुनौती देता है कि यदि कोई इस प्रकार यमक-अनुप्रास लिख सके तो वह घड़े के टुकड़े में जीवन भर पानी भरेगा। यह श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है क्योंकि कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि कवि ने काव्य का नाम अन्त में दिया है तो कुछ का तर्क है कि ये स्वयं कवि का ही नाम है।

यह काव्य अपने साहित्यिक रसरंचना का विशेष महत्व है। कवि ने विरहिणी के सन्देशों में यमक, अनुप्रास, अलंकारों एवं तुकान्त की विशिष्ट त्रयी संजोयी है। भगवतीलाल राजपुरोहित इसे संस्कृत का प्रथम तुकान्त काव्य मानते हैं। यमक अलंकार का यह प्रयोग मुनियर विलियम्स जैसे पश्चिमी लेखकों को कृत्रिम प्रतीत होता है। जबकि कृष्णामचारी इस विचार को अनुचित एवं षड्यंत्रकारी बताते हैं।

घटर्खपर के इस काव्य पर कई टीकायें लिखी गई हैं, जिसमें प्रमुख टीकाकार हैं -अभिनवगुप्त, भारतमल्लिका शंकर, गोवर्धन, शान्तिसूरि, कमलाकर, ताराचन्द, कुशलकवि, वैद्यनाथ आदि। अभिनवगुप्त ने अपनी टीका घटर्कपर कुलक विवृत्ति में यह माना है कि घटर्खपर काव्य भी कालिदास का ही जो उसने प्रारंभिक रूप में लिखा जिसका परिष्कृत संस्करण मेघदूत में फलीभूत हुआ। कमलाकर एवं ताराचन्द्र जैसे कई टीकाकारों ने भी इसे सही माना जबकि वैद्यनाथ एवं गोविन्द घटर्खपर को स्वतंत्र मानते हैं।

इस काव्य में कई प्राकृतिक वर्णन किये गये हैं जैसे बादलों के मनमोहक दृश्य उनकी वर्षा, बिजली, झरने, तारों से रहित रात्रि, कदंब, वेतक, 'कुटजा एवं सरजा के वृक्ष', सूर्य का न दिखना, मोर का नृत्य एवं चातक पक्षी का वर्षा बूंदों के लिये तड़पना, हंसों की जलक्रीड़ा, मक्खियों का जैसमीन पुष्पों का रस चूसना आदि वर्णन मिलता है। निश्चित रूप से इसमें रूपकों की भरमार है।

घटर्खपर काव्य में कवि विरह के मार्मिक एवं भावपूर्ण चित्र को उपस्थित करने में पूर्ण सफल हुआ है। विरहकाल में नायिका की अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप आदि विरह अवस्थाओं का वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से काव्य में हुआ है।

लेखकों से निवेदन

पाक्षिक आलेख सेवा 'विक्रम संवाद' के लिए विक्रमकालीन विविध विषयों पर प्रकाशन हेतु विषय विशेषज्ञों एवं इतिहास में रूचि रखने वाले लेखकों से लेख आमंत्रित हैं.

सम्पादक

पुस्तक चर्चा/मनोज कुमार

विज्ञान और पुरातन ज्ञान का संगम

पुरातन विज्ञान शीर्षक से प्रकाशित किताब विज्ञान और पुरातन ज्ञान का संगम है तो रहस्य और रोमांच की भी अनुभूति होती है। वरिष्ठ लेखक और पत्रकार प्रमोद भार्गव लिखते हैं कि 'पुरातन काल का इतिहास जब संवाद ना था, मुखरित था।' उनका यह कहना सौफीसदी सही है क्योंकि आधुनिक विज्ञान की जड़ें कहीं है तो पुरातन और सनातन में है। लेखक इस कार्य को बड़ी जिम्मेदारी के साथ पूर्ण करते हैं और निरंतर इस बात को स्थापित करने में जुटे हुए हैं कि पुरातन ज्ञान का केनवास आज से कहीं ज्यादा व्यापक था और दुनिया को ज्ञान बांटने में सक्षम। यह किताब 47 अध्याय में बंटी हुई है जिसमें हर अध्याय एक नयेपन से परिचय कराती है। मसलन, हनुमान के उड़ने का विज्ञान है तो चौरासी लाख योनियों का विज्ञान से आमजन का परिचय कराती है। रावण के दस सिरों का रहस्य व विज्ञान पाठकों को बांधे रखती है तो सबकी चाहत है कि उम्र को थाम लिया जाए, ऐसे पाठकों के लिए बुढ़ापे से मुक्ति, अमरता की लालसा अध्याय पठनीय है। गणेश द्वारा सूर्य को निगलने की कथा से रहस्य उठाता यह अध्याय रोचक है तो पुरातन ज्ञान के सामने नतमस्तक होता आधुनिक विज्ञान जो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। रहस्य और रोमांच का एक अध्याय है अदृश्य होने की विधि का विज्ञान है तो दुनिया के पहले चिकित्सा विज्ञानी धनन्वतरी के बारे में विस्तार से बताया गया है। आधुनिक समाज को समझाता अध्याय दाह क्रिया एवं श्राद्ध कर्म का विज्ञान। लेखक प्रमोद भार्गव के लेखों का यह संकलन अपने आपमें अद्वितीय है क्योंकि आधुनिक समाज के लिए उनके लेख ना केवल पठनीय है बल्कि संदर्भ की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण किताब है। खासतौर पर उनके लिए जो पुरातन ज्ञान सम्पदा में रूचि रखते हैं।

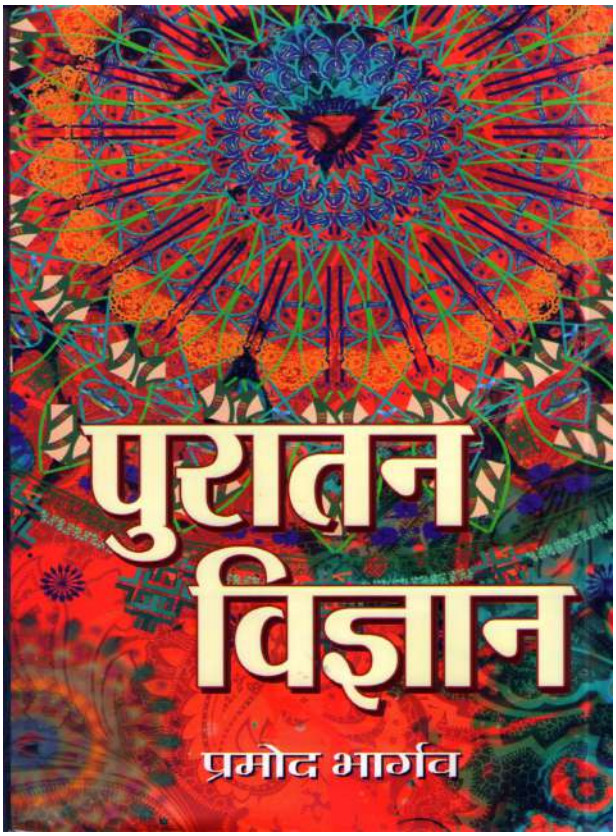

पुस्तक : पुरातन विज्ञान

लेखक : प्रमोद भार्गव

प्रकाशक : सत्यसाहित्य प्रकाशन,
694, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006

मूल्य : 400/-

'भारतीय संस्कृति के दो विलक्षण पहलू हैं। एक धर्म और आध्यात्म और दूसरा आध्यात्मिक विज्ञान। विडंबना यह रही कि इन्हें वर्गीकृत कर परिभाषित नहीं किया गया। मिथक रूपी विधा ने इन्हें और जटिल बना दिया। लेकिन इसकी चिरंतरता और सफलता यह रही कि इसके तीनों रूप श्रुति और वाचन में सरलता के कारण आज अपने मूल रूप में सुरक्षित हैं।'

-इसी पुस्तक से

महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.
आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com